
प्रवचन नं. १३१ गाथा-५० से ५५ तथा श्लोक ३७ दिनाङ्क ०९-११-१९७८, गुरुवार
कार्तिक शुक्ल १०, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, ५० से ५५ गाथा । २६ वाँ बोल चलता है । क्या कहते हैं ? २६ वें में ऐसा कहा कि आत्मा में जो कोई शुभभाव हो—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि (हो), वह सब पुद्गलकर्म के मन्द विपाक का फल है, वह जीव के स्वरूप में नहीं है । आहाहा ! कर्म के विपाक का मन्दपना, उसका वह फल है शुभराग-विशुद्धिस्थान कहा । वह राग, आत्मा

के स्वभाव में नहीं है। आहाहा! आत्मा ज्ञायकस्वरूप पूर्ण अभेदस्वरूप में वह राग नहीं, परन्तु यहाँ तो अब लब्धिस्थान भी उसमें नहीं, ऐसा कहना है। सूक्ष्म बात है भाई! सम्यग्दर्शन जो धर्म की पहली सीढ़ी है, उसका विषय आत्मा अभेद है। सम्यग्दर्शन, उस जीव में उसका विषय अभेद है, अभेद की दृष्टि होने पर उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! इसलिए यह राग की क्रिया, वह कोई सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है, तथा वह जीव में नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो विशेष कहते हैं। २७ वाँ बोल। चारित्रमोह के विपाक की क्रमशः निवृत्ति... आहाहा! जिनका लक्षण है ऐसे जो संयमलब्धिस्थान... संयम-संयम... जो आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित संयम-जो स्थिरता अन्दर है, उसके लब्धिस्थान-भेद, संयम के भेद। आहाहा! राग तो जीव में नहीं परन्तु लब्धिस्थान संयम के भेद हैं, वह भेद है। भगवान आत्मा अभेद में वह भेद नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन उस त्रिकाली अभेद को स्वीकार करता है। इन संयमलब्धि के स्थान को भी वह दृष्टि स्वीकार नहीं करती। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अभी तो यहाँ दया-दान-व्रत-भक्ति-तप आदि के परिणाम धर्म हैं-अभी तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह तो महामिथ्यात्व है। यहाँ तो संयमलब्धि के स्थान जो भेद, वे भेद भी अभेद में नहीं हैं। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा / जीव कहते हैं, वह अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण का पिण्ड और वह अभेद है। अभेद अर्थात् सामान्य है। उसमें—जीव में लब्धि के स्थान भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : अपूर्व बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है? चारित्रमोह के विपाक की क्रमशः... क्रमशः निवृत्ति जिनका लक्षण है... आहाहा! संयमलब्धिस्थान... आहाहा! संयम की प्राप्ति के भेद। आहाहा! वे सब जीव को नहीं हैं, जीव में नहीं हैं, अभेद में वे भेद नहीं हैं। आहाहा! ऐसा सिद्ध करना है। भगवान आत्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय जो अभेद। आहाहा! उसमें राग तो नहीं परन्तु लब्धि के स्थान, उस अभेद में नहीं। आहाहा! ऐसी बातें! दुनिया कहाँ पड़ी और कहाँ मानती है और धर्म कहीं रह गया है। आहाहा! ये संयम की निर्मलता के चारित्रमोह की क्रमशः निवृत्ति से... आहाहा! अन्दर में लब्धि के-संयमलब्धि के स्थान

/ भेद, वे जीव को नहीं हैं। अर्थात् ? कि जीव की अनुभूति करने पर—सम्यग्दर्शन और अनुभव करने पर, द्रव्यस्वभाव के अभेद की दृष्टि करने पर, अनुभव करने पर, उसमें उसके भेद नहीं आते। ऐसी बात है। वीतराग सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव का यह फरमान है। आहाहा! आहाहा!

दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव, यात्रा के भाव तो राग हैं, वे तो आत्मा में नहीं परन्तु चारित्रमोह की क्रम-क्रम से निवृत्तिरूप संयम के लब्धिस्थान-भेद प्रगट हों, आहाहा! वे जीवद्रव्य में नहीं है। यह भेद है, वह जीव में नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से... आहाहा! भेद है, उस पर लक्ष्य जानने से राग होता है; इसलिए उसे पुद्गलद्रव्य का परिणाम कहा है। आहाहा! संयम की, क्रम-क्रम से राग का अभाव होकर संयम की प्राप्ति के भेद होते हैं, उन्हें यहाँ पुद्गलद्रव्य के परिणाम कहा है। आहाहा! क्योंकि उनका लक्ष्य करने जाये तो विकल्प / राग उत्पन्न होता है और इसलिए उन्हें पुद्गलद्रव्य के परिणाम कहा गया है। आहाहा! ऐसी बात है। जिनवरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा कहते हैं, वह सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो व्रत, तप का, भक्ति-पूजा और यात्रा का भाव तो राग है, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं और आत्मा में नहीं, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो लब्धि के स्थान-भेद है। आहाहा! उस पर दृष्टि करने से तो विकल्प होता है; इसलिए कहते हैं कि लब्धि के स्थान जीवद्रव्य में नहीं है। किसे ? जीव में नहीं है, ऐसा किसे ख्याल आता है ? आहाहा! वे (अपनी) अनुभूति से भिन्न है। आहाहा! इसलिए उन्हें भिन्न कहा गया है। ओहोहो! भगवान आत्मा चैतन्यवस्तु जो जिनेश्वर-परमेश्वर ने कही है, वह वस्तु अभेद है। उस अभेद का अनुभव करने से ये भेद स्थान उसमें नहीं आते। आहाहा! राग तो उसमें नहीं आता परन्तु संयम की-पर्याय की लब्धि के भेद, अभेद की दृष्टि में-परमार्थ में वे भेद नहीं आते। आहाहा! इसलिए उन्हें पुद्गलद्रव्य के परिणाम कहा (गया है)। परमात्मा ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : प्राथमिक शिष्य को क्या करना चाहिए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! यह प्राथमिक शिष्य को करना चाहिए। यह जीव

अभेद है, उस पर दृष्टि करना, यह प्रथम में प्रथम जीव का कर्तव्य है। परन्तु क्या हो भाई! आहाहा! आहाहा! यह प्रथम में प्रथम आत्मा को करनेयोग्य हो तो भगवान आत्मा अभेदस्वरूप सामान्य जो ध्रुव है, उसकी दृष्टि करना और उसके भेद के स्थान और राग का उसमें निषेध करना। (वास्तव में तो) निषेध हो जाता है, करना भी नहीं पड़ता वहाँ। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले को, प्रथम धर्म की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन जिसे प्राप्त करना हो तो... आहाहा! जीव है, वह त्रिकाल ज्ञायकभाव है, उसकी दृष्टि करना। इसलिए दृष्टि के विषय में अभेद में यह व्यवहार का, दया, दान का राग तो इसकी वस्तु में है ही नहीं परन्तु ये भेदस्थान भी उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अरे रे! कहाँ जगत धर्म को मान बैठा और कहाँ धर्म का स्वरूप है! आहाहा! सम्प्रदाय में तो यह कहते हैं—व्रत पालो, दया पालो, भक्ति करो, पूजा करो, पंच महाव्रत पालो... यह सब तो राग है। आहाहा! यह तो जीव के स्वरूप में नहीं। भगवान आत्मा... आहाहा! जिसे प्रथम सम्यग्दर्शन करना हो, उसे प्रथम में प्रथम जीवद्रव्य अभेद है, उसकी दृष्टि करनी पड़ेगी। आहाहा! इसके बिना सम्यग्दर्शन तीन काल—तीन लोक में दूसरे प्रकार से होगा नहीं। ऐसी बात है। क्या हो?

मुमुक्षु : तीव्र पुरुषार्थ किया परन्तु कुछ हाथ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नजर कहाँ डाली है इसने? इसकी नजर बाहर में पड़ी है, विकल्प में और भेद में फँसकर पड़ा है यह। कल नहीं कहा था, दोपहर को आया नहीं था? सूक्ष्म उपयोग में हाथ आता है, तो हाथ नहीं आता, वहाँ सूक्ष्म उपयोग किया ही नहीं। सूक्ष्म बातें हैं बापू! वीतराग जिनेश्वरदेव का मार्ग कोई अलग प्रकार है। आहाहा! पूरी दुनिया से अलग है। अभी तो सम्प्रदाय में चलता है, उससे तो अलग बात है। आहाहा! वस्तु वीतराग त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं, महाविदेह में (विराजते हैं)। उन्होंने यह कहा है और सन्त ने वहाँ से लाकर ये शास्त्र बनाये हैं। आहाहा!

चारित्रमोह का विपाक... संयम है न? आहाहा! दर्शनमोह का विपाक ऐसा जो मिथ्यात्व, वह तो जीव में नहीं परन्तु चारित्रमोह के विपाक की निवृत्ति.. आहाहा! प्रवृत्ति—चारित्रमोह प्रवृत्ति तो रागादि है, वह तो पहले कहा, वह राग इस स्वरूप में नहीं।

सम्यग्दृष्टि का विषय जो आत्मा है, उसमें वह नहीं। आहाहा! परन्तु संयमलब्धिस्थान, आहाहा! वे पुद्गल के परिणाम गिने हैं। आहाहा! देखो, यह सन्तों की-दिगम्बर सन्तों की वाणी!! आहाहा! वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है। अपनी अनुभूति अर्थात्? आनन्दस्वरूप जो भगवान आत्मा है, उसे अनुसरकर अनुभूति होती है, सम्यग्दर्शन होता है / अनुभूति-ज्ञान होता है और शान्ति का वेदन होता है, ऐसी अनुभूति से वे लब्धि के स्थान भी उसमें-अनुभूति में नहीं आते। आहाहा! ऐसी बातें हैं अब। लोगों को तो बेचारों को ऐसा लगे यह सब निश्चय... निश्चय... निश्चय... उनकी बात सत्य है। निश्चय अर्थात् सत्य और व्यवहार अर्थात् असत्य और उपचार। बात सब है। आहाहा! यहाँ तो लब्धि के स्थान, वह व्यवहार है, उनका भी स्वभाव में अभाव है। आहाहा! कैसे गले उतरे? ऐसे के ऐसे जिन्दगी अज्ञान ही अज्ञान में निकाली डाली और चले जानेवाले हैं। आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव सर्वज्ञप्रभु ऐसा कहते हैं, वह सन्त ऐसे आढृतिया होकर जगत के लिए प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु! तू आत्मा किसे कहें, कहते हैं। जीव-अजीव अधिकार है न यह! आत्मा कहें किसे? आहाहा! सामान्य अभेदस्वरूप आत्मा है, जिसमें गुण का भेद भी नहीं, पर्याय का भेद भी नहीं। आहाहा! जिसमें देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा और नौ तत्त्व की श्रद्धा का राग, वह तो राग है, वह तो इसके स्वरूप में नहीं परन्तु यहाँ लब्धिस्थान जो राग की निवृत्ति से होनेवाले लब्धि के भेद, वे पर्याय के भेद हैं। आहाहा! वे सम्यग्दृष्टि को द्रव्य की-अभेद की अनुभूति होने पर उसमें भेद आते नहीं। कहो, देवीलालजी! रात्रि में कोई आया था न उदयपुर से।

मुमुक्षु : हीराभाई के मेहमान थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हीराभाई आये थे, उनके साथ उदयपुर का कोई आया था। तुम्हें याद किया था परन्तु नहीं थे। आहाहा!

ऐसी बात सुनना भी मुश्किल पड़े ऐसा है। आहाहा! यहाँ परमात्मा और सन्त दिगम्बर मुनि ऐसा जगत के लिए प्रसिद्ध करते हैं कि परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि जिसे आत्मा दृष्टि में लेना है, वह आत्मा अभेद है, उसे दृष्टि में लेने से,

उसमें लब्धि के स्थान उस अनुभूति में साथ नहीं आते। आहाहा! उसे अनुभूति और सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! अभी तो बात सुनने को नहीं मिलती। अर र! जगत में ऐसा सब विपरीत चलता है, सम्प्रदाय में अकेला विपरीत। आहाहा! अन्यत्र तो कहीं वीतराग के अतिरिक्त है नहीं। आहाहा! यह व्रत करो और अपवास करो, तपस्या करो, और दान दो और मन्दिर बनाओ... आहाहा! ये सब राग की क्रिया है। यह बना नहीं सकता परन्तु इसे भाव होता है तो वह शुभभाव है, राग है। वह राग कहीं धर्म नहीं और वह राग कहीं आत्मा के स्वरूप में नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आपके निमित्त से तो बहुत मन्दिर बने हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने बनाये? रामजीभाई ने किया है यह सब। प्रमुख के नीचे थे न? छब्बीस लाख का यह मकान (परमागममन्दिर) कौन बनाये? प्रभु! तुझे पता नहीं, यह तो जड़ की पर्याय उस काल में होनी थी, उससे वह हुई। रामजीभाई ने किया नहीं, प्रमुख तो ये थे।

मुमुक्षु : परन्तु मुझे छब्बीस लाख रुपये दे कौन, एक-डेढ़-दो दे नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे और कौन ले प्रभु? ये पैसा, मिट्टी, जड़, यह किसी को आत्मा दे, यह वस्तु में नहीं है। मैं जड़ को देता हूँ, यह तो उसका स्वामी हुआ। आहाहा! यह नोट, पैसा, सोना, मोहर दे, वह मैं तुम्हें देता हूँ, वह तो जड़ है, जड़ को तू दे सकता है? जड़ को रख सकता है? आहाहा! कठिन बात भाई! यह पैसा अजीवतत्त्व है, नोट अजीवतत्त्व है, यह जीवतत्त्व उसका स्वामी नहीं। अजीव का स्वामी अजीव है, उसके बदले जीव ऐसा मानता है कि यह पैसा मेरा है और मैं देता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। ए... शान्तिभाई! इन्होंने लाख रुपये दिये थे न? भावनगर (में) सस्ते साहित्य में, इनके भाई ने एक लाख और दूसरे तीस हजार और दूसरे बहुत निकाले हैं। आहाहा! हीरालाल ने अस्सी हजार निकाले थे न? अस्सी हजार निकाले थे न? बीस हजार दूसरे और पच्चीस हजार दूसरे बहुत निकाले हैं। कल आये थे न रात्रि को! यह पैसा कौन दे और कौन ले? बापू! तुझे पता नहीं, ये अजीव के परमाणु एक स्थान से दूसरे स्थान जाते हैं, वे उनकी स्वयं की क्रिया से जाते हैं। जीव ऐसा माने कि मैं इसे देता हूँ... बहुत सूक्ष्म बात, भाई! वह

पुद्गल का-जड़ का स्वामी होता है। जड़ का स्वामी है, वह जड़ है। आहाहा! आहाहा! निर्जरा अधिकार में आता है न यह! यदि राग मेरा है, ऐसा मानूँ तो मैं तो अजीव हो जाऊँ। इसी तरह यह शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, यह हिलने-चलने की (क्रिया मैं करता हूँ) तो आत्मा जड़ हो जाये। आहाहा! इसकी मान्यता में यह चैतन्य को भूल गया। आहाहा! पुद्गल का स्वामी / मालिक हुआ। यह तो मिट्टी-जगत की धूल है। आहाहा! इसकी क्रिया हिलने-चलने की मैं करता हूँ, यह बोलने की मैं करता हूँ, यह सब मिथ्याभ्रम है, अज्ञान है।

यहाँ तो इससे आगे ले गये हैं। अजीव तो आत्मा में नहीं; इसलिए अजीव का वह स्वामी नहीं परन्तु उसमें राग नहीं; इसलिए वह राग का स्वामी नहीं; यह तो ठीक, परन्तु भेदस्थान उसमें नहीं; इसलिए वह भेद का स्वामी नहीं; वह तो अभेद का स्वामी है। ए..ई..! ऐसी बात, बापू! वीतरागमार्ग कहीं है नहीं, वीतराग के अतिरिक्त, जिनेश्वर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं यह मार्ग है ही नहीं कहीं। आहाहा!

यह प्रभु स्वयं आत्मा, जिसका ध्रुव सामान्यस्वरूप है, जिसकी सदृशता, अभेदता जिसका स्वरूप है, उसकी दृष्टि करने पर, अनुभूति करने पर, ये भेदस्थान उसमें नहीं आते। आहाहा! इसलिए इन लब्धि के भेदस्थान को भी पुद्गल के परिणाम कहा गया है। आहाहा! अरे रे! अरे, प्रभु! जन्म-मरण कर-करके तेरा कचूमर निकल गया है प्रभु! अनन्त-अनन्त अवतार निगोद के, यह कुत्ते के, कौवे के भव करके अनन्त अवतार किये, इस मिथ्यात्व के कारण (अनन्त अवतार किये हैं)। आहाहा! एक ही बात है-मिथ्यात्व के कारण... मिथ्यात्व में अनन्त भव करने की ताकत है। आहाहा! यह मिथ्यात्व क्या है? - इसका पता नहीं इसे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि लब्धि के स्थान-भेद, वह मेरा-अभेद का स्वरूप है—ऐसा माने तो वह मिथ्यात्व है और दया, दान, व्रत, तप, भक्ति और यात्रा के भाव होते हैं, वह मेरा राग है और वह मेरा कर्तव्य है - ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। यह २७ वाँ बोल हुआ। २७।

२८। (इन गाथाओं में) २९ बोल हैं। २९ बोल का घूरा, वह आत्मा में नहीं है।

आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दघन प्रभु, शुद्ध ध्रुव चैतन्यस्वरूप, ऐसा जो अभेद भाव है, उसमें ये भेद और रागादि नहीं है। ऐसी दृष्टि होने पर इसे सम्यग्दर्शन होता है। चारित्र तो अभी कहीं रह गया, वह तो बहुत आगे की बात है, बापू! आहाहा!

२८ (बोल) पर्याप्त एवं अपर्याप्त ऐसे बादर, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,... एकेन्द्रिय जीव है न? यह नीम, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, ये सब एकेन्द्रिय जीव हैं। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त; ऐसे दो इन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त; पंचेन्द्रिय में आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा और मन, छह पर्याप्ति होती है। एकेन्द्रिय को मन और भाषा नहीं है, चार होती है। ऐसी ये सब पर्याप्त और अपर्याप्त जो है, दो इन्द्रिय पर्याप्त, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय के पर्याप्त, फिर संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय जिनका लक्षण है, ऐसे जो जीवस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं... आहाहा! ये जीव के स्थान, पर्याप्त-अपर्याप्त आदि, ये जीवद्रव्य में नहीं है। आहाहा! परमात्मा जिनेश्वरदेव इन्द्रों के समक्ष, गणधरों के समक्ष ऐसा फरमाते थे, वह यह बात है। आहाहा! प्रभु! तुझमें जीव के जो पर्याप्त-अपर्याप्त स्थान हैं-भेद हैं, वे जीव के स्थान हैं। आहाहा! वे जीवस्थान जीव में नहीं है। कहो, शान्तिभाई! कहीं कभी सुनने की दरकार ही नहीं की; ऐसी की ऐसी जिन्दगी मजदूरी कर-करके-यह धन्धा और व्यापार पाप की बड़ी मजदूरी है और निवृत्त हो तो स्त्री-पुत्र के साथ रमे, यह भी पाप की मजदूरी है। आहाहा! पुण्य का भी ठिकाना नहीं, वहाँ धर्म तो कहाँ रहा? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव अरिहन्त परमात्मा की वाणी में ऐसा आया। प्रभु! जीव के जितने भेद पर्याप्त और अपर्याप्त कहने में चौदह बोल आते हैं। आहाहा! वे सब तेरे जीवद्रव्य में नहीं है। जीव के भेद जीवद्रव्य में नहीं है। वे तो पर्याय है न! वस्तु में नहीं है। इसलिए इसे वस्तु की दृष्टि करे तो सम्यक्त्व होता है। यह पर्याप्त-अपर्याप्त की दृष्टि है, वह तो पर्यायदृष्टि है। आहाहा! ये पंचेन्द्रिय जिनका लक्षण है, ऐसे जो जीवस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं... क्यों नहीं? क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने... वह तो भेद है, भेद का लक्ष्य जाने से राग होता है; इसलिए पुद्गल के परिणाम है - ऐसा कहा। आहाहा! जीव पर्याप्त है और अपर्याप्त है, पंचेन्द्रिय पर्याप्त है और अपर्याप्त है - ऐसा जो लक्ष्य जाये, वहाँ उसे राग होता है। आहाहा! इसलिए उसे पुद्गल का परिणाम कहकर

जीव की अनुभूति से वे भिन्न हैं। आहाहा! भगवान आत्मा को अनुसरणकर अभेद की अनुभूति होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर और सम्यग्ज्ञान और शान्ति का अनुभव होने पर, वे जीवस्थान जीव में नहीं है - ऐसा अनुभूति में आता है। आहाहा! ऐसा है। एक तो अभी यह पकड़ना कठिन। आहाहा! ऐसी बातें बापू! यह भव का अन्त लाने की बात है, प्रभु! परिभ्रमण कर-करके कचूमर निकल गया इसका।

‘मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।’ मुनिपना लिया, पंच महाव्रत पालन किये। मुनिपना अर्थात् बाह्य क्रियाकाण्ड, अट्टाईस मूलगुण पालन किये, हजारों रानियाँ छोड़ी, परन्तु वह सब तो राग था वह तो... आहाहा! बहुत तो शुक्ललेश्या थी, उससे स्वर्ग गया। ‘मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।’ ये पंच महाव्रत के परिणाम, दुःख है, आस्रव है, राग है। आहाहा। कठिन काम। आत्मज्ञान... वस्तु जो यह अभेद कही वह यह, भगवान आत्मा का सामान्य का अनुभव होना, अभेद का अनुभव होना, इसका नाम आत्मज्ञान और आत्मदर्शन कहने में आता है। आहाहा! ये चौदह बोल (जीवस्थान) नहीं।

अन्तिम बोल, अब २९ बोल में अन्तिम बोल। मिथ्यादृष्टि... पना वह जीवद्रव्य में नहीं है, पर्याय में है, वह जीवद्रव्य में नहीं है। यह तो अभी सयोगीपना जीव में नहीं है, ऐसा कहेंगे। यह तो फिर ठीक, आहाहा! अलौकिक मार्ग है प्रभु का। आहाहा! जिनेन्द्रदेव (का) इन्द्र एकावतारी जहाँ सुनने बैठते होंगे, वह बात कैसी होगी? आहाहा! दया पालो और व्रत करो, ऐसी बातें तो कुम्हार भी कहता है। आहाहा!

श्रोता : ये २९ बोल एक बार फिर से संक्षिप्त में लो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वे गये, फिर से नहीं आते। यहाँ आते-आते पाँचवाँ महीना चलता है, यह ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आसोज छठवाँ महीना, साढ़े पाँच महीने होंगे। ५५ गाथा, ऐसी तो ४१५ गाथा है। यह तो अठारह बार व्याख्यान में पढ़ा गया है। एक-एक शब्द का अठारह बार (अर्थ हुआ है)। यह तो उन्नीसवीं बार चलता है, तुम्हें वहाँ रहना-भटकना और यहाँ गया, उसे वापस फिर से लो.... देवानुप्रिया! ऐसा है। और इसमें सब आ जाता है। आहाहा! एक-एक लाईन और एक-एक गाथा का भाव एक में सबका भाव वहाँ आ जाता है। आहाहा!

वर्ण जिसमें नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, यहाँ से तो शुरु किया है। अब यह तो यहाँ लेते-लेते चौदह गुणस्थान भी इसमें नहीं। आहाहा! आहाहा! भगवान आत्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय अभेद चैतन्यमूर्ति प्रभु, आहाहा! उसमें मिथ्यादृष्टिपना नहीं। उसमें सासादनसम्यग्दृष्टि,... सासादन दूसरा गुणस्थान इसमें नहीं। आहा! है न? सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि,... तीसरा गुणस्थान, वह जीवद्रव्य में नहीं, वह तो इसकी पर्याय में है, वस्तु में नहीं। आहाहा! फिर असंयतसम्यग्दृष्टि,... असंयत सम्यग्दृष्टि चौथा गुणस्थान। अभी असंयत है परन्तु सम्यग्दर्शन है, तथापि असंयतसम्यग्दृष्टि वह पर्याय है; वह द्रव्य में नहीं है। आहाहा! असंयतसम्यग्दृष्टि भी दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! दृष्टि का विषय तो अभेद चिदानन्द प्रभु है। अरे रे! ऐसे भेद क्या और कहाँ की बातें यह? कितनों को ही तो ऐसा लगता है कि जैन की बातें ऐसी होंगी? परन्तु हमने तो जैन में ऐसा सुना था-व्रत पालो, दया पालो, रात्रिभोजन छोड़ो, छह परखी ब्रह्मचर्य पालो, छह परखी कन्दमूल नहीं खाना और अमुक... अब सुन न! सब बातें तेरी, ये तो सब राग की क्रिया की बातें हैं। आहाहा! जड़ की क्रिया जड़ में, परन्तु अन्दर राग मन्द हो तो वह शुभभाव है; वह कहीं धर्म नहीं और वह धर्म का कारण भी नहीं; धर्म का कारण तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, वह धर्म का कारण है। आहाहा!

असंयतसम्यग्दृष्टि भी जीवद्रव्य में नहीं है। आहाहा! संयतासंयत,... श्रावकपना। सच्चा श्रावक, हों! ये बाड़ा के श्रावक, वे श्रावक नहीं। वे तो सब हैं, उन्हें भी कब पता है कि यह दया क्या, व्रत क्या और आत्मा क्या? यह तो सच्चे संयतासंयत जो सम्यग्दर्शनसहित, जिसे आंशिक स्थिरता भी शान्ति की आयी हो और कुछ असंयत (पना हो) संयतासंयत, ऐसा पंचम गुणस्थान, वह भी जीवद्रव्य में नहीं है, वह तो पर्याय है। त्रिकाल द्रव्य में वह नहीं है। आहाहा! इसलिए वह दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा!

प्रमत्तसंयत,... सच्चे मुनि, सच्चे मुनि आत्म-अनुभव - आनन्द के अनुभवसहित जिन्हें शान्ति की स्थिरता बहुत जम गयी हो, जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का बहुत-प्रचुर अनुभव हो, ऐसे प्रमत्तसंयत वह मुनिपने की दशा भी जीवद्रव्य में नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह तो पर्याय है, भेद है, वह जीवद्रव्य के अभेद में वह नहीं है। आत्मा की अनुभूति करने

पर उसमें वह नहीं आता। यह पंचम गुणस्थान या छठवाँ गुणस्थान उस अनुभूति में नहीं आता। आहाहा! ऐसी बात!

अकेला भगवान पूर्णानन्द प्रभु... यह आगे श्लोक में कहेंगे – दूसरा कुछ दिखता ही नहीं, वहाँ एक ही चैतन्यस्वभाव अभेद दिखता है। कलश में कहेंगे। आहाहा! अकेला अभेद चैतन्य, धर्मी जीव को अन्तर अभेदस्वरूप अकेला दिखता है, उसमें ये सब भेद-वेद रागादि दिखते नहीं, वे अजीव हैं। आहाहा!

अप्रमत्तसंयत,... सातवाँ गुणस्थान। जिसे आनन्द में लीनता हो, जिसे पंच महाव्रत के विकल्प भी छूट गये हों, ऐसी अप्रमत्तदशा भी जीवद्रव्य में नहीं है, वह तो पर्याय है। आहाहा! वह अप्रमत्तदशा भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा! ज्ञान उसे जाने परन्तु दृष्टि है, वह अभेद पर है, उसे (अभेद को) स्वीकार करती है। वह भेद को स्वीकार नहीं करती। आहाहा! ऐसी बातें अब! अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि यह पंथ नया निकाला होगा? नया नहीं, बापू! अनादि का मार्ग यही है। महाविदेह में यही चलता है, वहाँ परमात्मा विराजते हैं। अप्रमत्तसंयत।

मुमुक्षु : वहाँ से यह मार्ग आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ से यह मार्ग आया है। आहाहा!

यह **अपूर्वकरण...** आठवाँ-आठवाँ गुणस्थान, अपूर्वकरण अथवा **उपशमक तथा क्षपक,...** दोनों साथ में और क्षपक। अपूर्वकरण में भी क्षपक, एक उपशम और एक क्षपक दोनों शामिल, ये आत्मा में नहीं हैं, द्रव्यस्वभाव में यह नहीं हैं। चौदह गुणस्थान जीव में नहीं हैं, तब जड़ में होंगे? एक व्यक्ति ऐसा कहता था। आहाहा! अरे, सुन न प्रभु! इसकी पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं। दृष्टि का विषय जो अभेद है, उसमें नहीं, पर्याय में हो। आहाहा! ऐसा है।

नौवाँ गुणस्थान **अनिवृत्तिबादर-साम्पराय...** नौवाँ गुणस्थान, **उपशमक तथा क्षपक,...** इसके दो भेद हैं न! और **सूक्ष्मसाम्पराय...** इसके भी **उपशमक तथा क्षपक,...** दो भेद हैं और **उपशान्तकषाय,...** ग्यारहवाँ, ग्यारहवें गुणस्थान की दशा उपशान्तकषाय, वह जीव में नहीं है। आहाहा! (जीवद्रव्य) अभेद है, उसमें ये कहाँ हैं? ये तो पर्याय में हैं। आहाहा!

क्षीणकषाय... बारहवाँ गुणस्थान, कषाय का नाश होकर कषाय की क्षीण दशा प्रगट हुई, परन्तु वह तो पर्याय में है, वस्तु में नहीं। सम्यग्दर्शन का विषय जो द्रव्य है, उसमें नहीं। सम्यग्दर्शन के साथ ज्ञान होता है, वह ज्ञान जानता है कि इस पर्याय में यह है। आहाहा! ऐसे प्रकार का... इसमें करना क्या? आहाहा! भगवान को और आत्मा को पहचानकर, रागादि-पर्याय को पहचानकर अभेद में जाना, यह इसे करना है। आहाहा! इसके बिना धर्म की शुरुआत भी नहीं होती। लाख तेरी यात्रा कर और लाख भक्ति कर भगवान की, करोड़ों-अरबों रुपये खर्चकर मन्दिर बना, उसमें कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

सयोगकेवली... जीवद्रव्य में नहीं है। तेरहवाँ गुणस्थान केवली का, सयोगकेवली परमात्मा, वह पर्याय में है; वह द्रव्य में नहीं। आहाहा! ओहो! अपने गाते थे, नहीं? लाठीवाले तलकचन्दभाई (गाते थे)। तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं। मोटे थे और गाते थे। आहाहा! आहाहा! सयोगकेवली, आहाहा! योगसहित जो कम्पनसहित केवली परमात्मा, वह पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं। पर्याय, पर्याय में है; वह द्रव्य में नहीं। आहाहा! और वह पर्यायदृष्टि छुड़ाने को द्रव्य में नहीं, वह द्रव्यदृष्टि कराने को यह बात है। आहाहा! अरे!
अयोगकेवली... चौदहवाँ गुणस्थान, पाँच अक्षर रहे अ, आ, इ, उ, ओ... वह भी पर्याय है। आहाहा! वह द्रव्य में नहीं। आहाहा!

जिनका लक्षण है, ऐसे जो गुणस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं... आहाहा! अर्थात्? क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है। स्वद्रव्य का अनुभव करने पर वे भेद उसमें नहीं आते। आहाहा! अरे, ऐसी बातें अब! यह वीतराग जिनदेव, जिनदेव जिनेन्द्र प्रभु का यह हुकम है। आहाहा! वाड़ा में ५०-५०, ६०, ७०-७० वर्ष निकाले हों, उन्होंने भी सुना न हो। सत्य सुना न हो, ऐसा कहा। सत्य तो है नहीं। आहाहा! अरे रे! जिन्दगी अज्ञान ही अज्ञान में ऐसे अवतार अनन्त किये, उसका अन्त नहीं आया। वे जीवद्रव्य में नहीं हैं, ऐसी दृष्टि होने पर भव का अन्त आ जाता है। आहाहा! भगवान आत्मा अभेद चैतन्यघन, ध्रुव सामान्य सदृश एकरूप की दृष्टि होने पर सम्यग्दर्शन होने पर, वहाँ उसे भव का अन्त आ जाता है। आहाहा! इसके बिना भव का अन्त कहीं नहीं आता। आहाहा!

वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है। वे जीवद्रव्य जो ज्ञायकभाव अकेला ज्ञानस्वभावभाव-सर्वज्ञस्वभावभाव, उसकी अनुभूति होने पर... अनुभूति वह पर्याय है, है वह पर्याय परन्तु उस त्रिकाल का अनुभव पर्याय में होने पर वे भेद नहीं आते। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसलिए लोग फिर (ऐसा कहते हैं) ए...ई! सोनगढ़ का निश्चयाभास है। सब पता है बापू! तुम सब पूरी दुनिया क्या कहती है। ये व्यवहार को मानते नहीं और व्यवहार से होता है। व्यवहार आया नहीं? है नहीं? परन्तु है उससे धर्म हो और उसके आश्रय से लाभ हो, ऐसा नहीं है। व्यवहार आया, तब उसका निषेध होता है। आहाहा! देवीलालजी! चौदह गुणस्थान है; है-ऐसा कहा। यह क्या हुआ? पर्याय में यह व्यवहार है परन्तु इसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! (इस प्रकार ये समस्त ही पुद्गलद्रव्य के परिणाममय भाव हैं;....) पुद्गल परिणाममय भाव हैं। देखा? (वे सब जीव नहीं हैं। जीव तो परमार्थ से चैतन्यशक्तिमात्र है।) आहाहा! चैतन्यस्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... चैतन्यस्वभाव... ध्रुवस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव... चैतन्यस्वभाव, वह जीव है। आहाहा! उसे-ऐसे जीव को अन्तर में मानना, अनुभव करना इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। आहाहा!

कलश-३७

अब, इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
 भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
 तेनैवांतस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी।
 नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्॥३७॥

श्लोकार्थ - [वर्ण-आद्याः] जो वर्णादिक [वा] अथवा [राग मोह-आदयः वा] रागमोहादिक [भावाः] भाव कहे [सर्वे एव] वे सब ही [अस्य पुंसः] इस पुरुष (आत्मा) से [भिन्नाः] भिन्न हैं [तेन एव] इसलिए [अन्तःतत्त्वतः पश्यतः] अन्तर्दृष्टि

से देखनेवाले को [अमी नो दृष्टाः स्युः] यह सब दिखायी नहीं देते, [एकं परं दृष्टं स्यात्] मात्र एक सर्वोपरि तत्त्व ही दिखायी देता है - केवल एक चैतन्यभावस्वरूप अभेदरूप आत्मा ही दिखायी देता है।

भावार्थ - परमार्थनय अभेद ही है इसलिए इस दृष्टि से देखने पर भेद नहीं दिखायी देता; इस नय की दृष्टि में पुरुष चैतन्यमात्र ही दिखायी देता है। इसलिए वे समस्त ही वर्णादिक तथा रागादिक भाव पुरुष से भिन्न ही हैं।

ये वर्ण से लेकर गुणस्थान पर्यन्त जो भाव हैं, उनका स्वरूप विशेषरूप से जानना हो तो गोम्मटसार आदि ग्रन्थों से जान लेना ॥३७॥

कलश - ३७ पर प्रवचन

कलश कहते हैं ? अब, इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवांतस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी।
नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्॥३७॥

आहाहा! जो वर्णादिक अथवा रागमोहादिक... वर्ण आया। ऐ देवानुप्रिया! यह वर्ण आया, पहले से आया यह। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संहनन और संस्थान से लेकर वर्ण, गन्ध और राग, द्वेष, मोह, दया, दान, व्रत आदि के परिणाम जो भाव कहे, वे सब 'अस्य पुंसः' 'अस्य पुंसः' इस परमात्मा... पुंस अर्थात् पुरुष। आहाहा! 'अस्य पुंसः' इस पुरुष (आत्मा) से... पुरुष अर्थात् भगवान आत्मा से, भिन्न है... भिन्न है। आहाहा! परन्तु वेदान्त की तरह वह पर्याय है ही नहीं, ऐसा नहीं है। भिन्न है... परन्तु जीवद्रव्य के अभेद में वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें! लो! इसलिए 'अन्तःतत्त्वतः पश्यतः' अन्तर्दृष्टि से देखनेवाले को... अन्तरभगवान ज्ञायकस्वभाव जो है, उस अन्तः तत्त्व को देखनेवाले को, आहाहा! वे तो (वर्णादि-रागादि) सब बाह्यतत्त्व हैं, कहते हैं पर्यायतत्त्व है। आहाहा! अन्तर्दृष्टि से देखनेवाले को... सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञान के अनुभव में अन्तर्दृष्टि

द्वारा देखनेवाले को 'अमी नो दृष्टाः स्युः' यह सब दिखायी नहीं देते,... यह 'अमी' यह 'नो दृष्टाः' 'नो दृष्टा' दिखायी नहीं देते,... आहाहा!

यह क्या कहा ? कि वर्णादि, गुणस्थानादि, ये सब जीव में नहीं है। किसे ? कहाँ ? कि जो अन्तर्दृष्टि से अन्दर में आत्मा को देखता है, उसमें उसे ये दिखायी नहीं देते। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। परमेश्वर-जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा पुकारते हैं। प्रभु! जो आत्मा अन्तर वस्तु है, उसे अन्तर में देखनेवाले को ये रागादि और भेद उसमें दिखायी नहीं देते। आहाहा! इसलिए इन्हें अजीव कहा गया है। आहाहा! थोड़ा भी इसे सत्य होना चाहिए, बड़ी लम्बी-लम्बी बातें करे और सत्य का ठिकाना नहीं हो... आहाहा! ओहो! क्या कहा ? अन्तर्दृष्टि से देखनेवाले को 'अन्तःतत्त्वतः पश्यतः'... अन्तर का तत्त्व ज्ञायकभाव जो तत्त्व-आत्मा, उसे देखनेवाले को... वह अनुभूति से भिन्न कहा न, वह यह शब्द लिया। 'अन्तःतत्त्वतः पश्यतः'... आहाहा! भगवान् पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण का बादशाह, ऐसा जो प्रभु आत्मा... यह आत्मा प्रभु, हों! यह 'अन्तःतत्त्वतः'... अन्तर्दृष्टि से देखनेवाले को... अर्थात् सम्यग्दृष्टि को-अन्तर (स्वरूप को) देखनेवाले को, आहाहा! उसमें ऐसे भेद दिखायी नहीं देते। अन्तर के अनुभव में ये नहीं आते, इसलिए ये दिखायी नहीं देते। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

अन्तर्दृष्टि से देखनेवाले को... एकदम संक्षिप्त कर दिया है कि ये सब भेद क्यों नहीं ? कि अन्तर्दृष्टि से भगवान् को जहाँ अनुभवते हैं, उसमें ये नहीं आते; इसलिए ये भिन्न हैं, उसमें ये दिखायी नहीं देते, अभेद में भेद दिखायी नहीं देते। आहाहा! यह सातवीं गाथा में आ गया है। अभेद में भेद दिखायी नहीं देते। भेद हैं अवश्य। आहाहा! वे अन्तर्दृष्टि से... आहाहा! 'अन्तःतत्त्वतः पश्यतः' अन्दर में तत्त्व को देखनेवाले को, अन्दर के तत्त्व को देखनेवाले को, ज्ञायकस्वभाव जो भगवान् परिपूर्ण प्रभु-वर्तमान परिपूर्ण प्रभु आत्मा, ऐसे अन्तःतत्त्व अर्थात् स्वरूप को देखनेवाले को। आहाहा! 'अमी नो दृष्टाः स्युः' ये सब दिखायी नहीं देते। आहाहा!

वेदान्त ऐसा कहता है कि आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं। जगत् मिथ्या-ऐसा नहीं है। अन्तर अनुभव में वह दिखायी नहीं देता; इसलिए वह नहीं है, बाकी

उसमें (वह) है। आहाहा! वेदान्त कहता है, एक ही आत्मा सर्वव्यापक, बस! पर्याय-पर्याय ऐसा कुछ नहीं। यह बात एकदम मिथ्या है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव ने कहा हुआ मार्ग वह अन्यत्र कहीं नहीं है। इन वेदान्त ने आत्मा की बड़ी-बड़ी बात की है, इतनी अधिक की है, वह तो ऐसा है और ऐसा है, सब एकान्त है। पर्याय को माया (कहते हैं)। अनुभूति होना, वह तो पर्याय है और पर्याय में है तो अन्तर्दृष्टि द्वारा देखनेवाले को उसमें वह नहीं है, उसमें-पर्याय में है। आहाहा! ऐसा बहुत सूक्ष्म। दया पालना हो तो समझ में आये, पैसा दान देना हो तो समझ में आये। पाँच-पच्चीस हजार... ई! लाख-दो लाख दे दूँ, ई! कौन दे, यह कोई करोड़ हो तो कहीं करोड़ नहीं दे देगा, अमुक दे-लाख-दो लाख बहुत हुआ हो तो। आहाहा! तो उसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है, वह आत्मा का धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

आहाहा! अन्तर्दृष्टि से देखनेवाले को 'अमी' यह 'नो दृष्टाः स्युः' सब दिखायी नहीं देते,... दिखायी नहीं देते। 'नो दृष्टाः स्युः' आहाहा! तब क्या दिखायी देता है? अन्तर्दृष्टि से देखनेवाले को, आहाहा! अन्तर तत्त्व भगवान आत्मा को देखनेवाले को 'एकं परं दृष्टं स्यात्' मात्र एक सर्वोपरि तत्त्व ही दिखायी देता है... आहाहा! मात्र 'एकं परं दृष्टं स्यात्' मात्र एक सर्वोपरि... भगवान ज्ञायकस्वरूप ध्रुव ही पर्याय में दिखायी देता है। पर्याय में दिखता है न!

सर्वोपरि तत्त्व ही... देखा? एकान्त किया। आहाहा! सर्वोपरि तत्त्व ही दिखायी देता है... अर्थात् केवल एक चैतन्यभावस्वरूप अभेदरूप... भाषा देखो! केवल एक, सर्वोपरि तत्त्व का अर्थ किया-एक किया न! एक किया न, एक सर्वोपरि तत्त्व का अर्थ किया-केवल एक चैतन्यभावस्वरूप अभेद... केवल एक चैतन्यभाव... चैतन्यभाव... चैतन्यभाव-ऐसा अभेदरूप आत्मा ही दिखायी देता है। अभेदरूप भगवान अन्दर आत्मा-अभेद आत्मा ही दिखता है। आहाहा! आहाहा! कितनी मीठी सरल भाषा! अन्तर (में) देखनेवाले को दूसरा कुछ दिखायी नहीं देता। एक आत्मा अभेद है, वह दिखायी देता है। आहाहा!

भावार्थ : परमार्थनय अभेद ही है... देखा? परमार्थनय त्रिकाल अभेद को देखता

है, वह परमार्थनय ही अभेद है, ऐसा यहाँ तो कहा। अभेद को देखता है, ऐसा भी नहीं, भाई! आहाहा! परमार्थनय अभेद... स्वरूप है। आहाहा! 'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' नहीं कहा? ग्यारहवीं गाथा में। भूतार्थ वह शुद्धनय है, शुद्धनय का विषय है, ऐसा भी वहाँ तो नहीं कहा। अभेद.. अभेद.. वस्तु वह शुद्धनय है। ऐसा यहाँ कहते हैं, परमार्थनय परमार्थनय अभेद ही है... परमार्थनय का विषय अभेद है, ऐसे दो भेद न करके... आहाहा! इसलिए इस दृष्टि से देखने पर भेद नहीं दिखायी देता; इस नय की दृष्टि में पुरुष चैतन्यमात्र ही दिखायी देता है। आहाहा! दृष्टि में पुरुष... पुंस है न? पुंस लिखा है न? पुंस अर्थात् पुरुष, अर्थात् आत्मा, चैतन्यमात्र दिखता है। इसलिए वे समस्त ही वर्णादिक तथा रागादिक भाव पुरुष से भिन्न ही हैं। आत्मा से भिन्न है, आहाहा! परन्तु भिन्न है। अभेद में भेद दिखते नहीं, इसलिए उन्हें आत्मा में नहीं है - ऐसा कहा गया है।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)